गाँवों के दम पर ही देश आत्मनिर्भर हो सकता है

21वीं सदी में यदि भारत को पुनः एक वैश्विक शक्ति बनाना है तो हर क्षेत्र में हमें आत्म निर्भरता हासिल करना ज़रूरी है। आत्म निर्भरता का सामान्यतः शाब्दिक अर्थ यह लगाया जाता है कि देश अर्थ केंद्रित स्वतंत्रता हासिल कर ले। अर्थात, सभी उत्पादों को हम हमारे देश में ही निर्मित करने लगें एवं आयात पर हमारी निर्भरता कम से कम हो जाए। परंतु, वास्तव में आत्म निर्भरता हासिल करने के मायने इस सामान्य शाब्दिक अर्थ से कहीं आगे है। दरअसल, भारत की संस्कृति और भारत के संस्कार उस आत्मनिर्भरता की बात करते हैं जिसकी भावना विश्व एक परिवार के रूप में रहती है।

भारत जब आत्मनिर्भरता की बात करता है तो आत्म केंद्रित आत्मनिर्भरता की वकालत नहीं करता बल्कि भारत की आत्मनिर्भरता में संसार के सुख सहयोग और शांति की चिंता समाहित होती है। जो भारतीय संस्कृति, जीव मात्र का कल्याण चाहती हो, जो भारतीय संस्कृति पूरे विश्व को परिवार मानती हो, ऐसी सोच रखती हो, जो पृथ्वी को अपनी माँ मानती हो, वो भारतीय संस्कृति जब आत्मनिर्भर बनती है तो उससे एक सुखी विश्व की भावना भी बलवती होती है और इसमें विश्व की प्रगति भी समाहित रहती है। इसी कारण से आज विश्व के सामने भारत का मूल चिंतन आशा की एक किरण के रूप में नज़र आता है। भारत के परिप्रेक्ष्य में आत्म निर्भरता केवल अर्थ केंद्रित नहीं होना है ब्लिक़ यह मानव केंद्रित भी होनी चाहिए। अर्थात, इस धरा पर रहने वाला प्रत्येक प्राणी सुखी एवं प्रसन्न रहे यही हमारा अंतिम लक्ष्य भी है।

जब हम इतिहास पर नज़र डालतें हैं तो पता चलता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का गौरवशाली इतिहास रहा है एवं जो भारतीय संस्कृति हज़ारों सालों से सम्पन्न रही है, उसका पालन करते हुए ही उस समय पर अर्थव्यवस्था चलाई जाती थी। भारत को उस समय सोने की चिड़िया कहा जाता था। वैश्विक व्यापार एवं निर्यात में भारत का वर्चस्व था। पिछले लगभग 5000 सालों के बीच में ज़्यादातर समय भारत विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था रहा है। उस समय भारत में कृषि क्षेत्र में उत्पादकता अपने चरम पर थी। मौर्य शासन काल, चोला शासन काल, चालुक्य शासन काल, अहोम राजवंश, पल्लव शासन काल, पण्ड्या शासन काल, छेरा शासन काल, गुप्त शासन काल, हर्ष शासन काल, मराठा शासन काल, आदि अन्य कई शासन कालों में भारत आर्थिक दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न देश रहा है।

धार्मिक नगर – प्रयाग राज, बनारस, पुरी, नासिक, आदि जो नदियों के आसपास बसे हुए थे, वे उस

समय पर व्यापार एवं व्यवसाय की दृष्टि से बहुत सम्पन्न नगर थे। वर्ष 1700 में भारत का वैश्विक अर्थव्यवस्था में 25 प्रतिशत का हिस्सा था। इसी प्रकार, वर्ष 1850 तक भारत का विनिर्माण के क्षेत्र में भी विश्व में कुल विनिर्माण का 25 प्रतिशत हिस्सा था। भारत में ब्रिटिश एंपायर के आने के बाद (ईस्ट इंडिया कम्पनी – 1764 से 1857 तक एवं उसके बाद ब्रिटिश राज – 1858 से 1947 तक) विनिर्माण का कार्य भारत से ब्रिटेन एवं अन्य यूरोपीयन देशों की ओर स्थानांतरित किया गया और विनिर्माण के क्षेत्र में भारत का हिस्सा वैश्विक स्तर पर घटता चला गया।

अत: अब पुन: भारतीय संस्कृति को केंद्र में रखकर ही आर्थिक विकास किया जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद दोनों में समन्वय स्थापित करना सिखाया जाता है एवं व्यापार में भी आचार-विचार का पालन किया जाता है। भारतीय जीवन पद्धति में मानवीय पहलुओं को प्राथमिकता दी जाती है। अत: आज देश में भारतीय जीवन पद्धति को पुनर्स्थापित करने की अत्यधिक आवश्यकता है। देश के आर्थिक विकास को केवल सकल घरेलू उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय से नहीं आँका जा सकता है बल्कि इसके आँकलन में रोज़गार के अवसरों में हो रही वृद्धि एवं नागरिकों में आनंद की मात्रा को भी शामिल किया जाना चाहिए। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास हेतु एक शुद्ध भारतीय मॉडल को विकसित किए जाने की आज एक महती आवश्यकता है।

इस भारतीय मॉडल के अंतर्गत ग्रामीण इलाक़ों में निवास कर रहे लोगों को स्वावलंबी बनाया जाना पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। गाँव, जिले, प्रांत एवं देश को इसी क्रम में आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। साथ ही, भारतीय मॉडल में ऊर्जा दक्षता, पर्यावरण की अनुकूलता, प्रकृति से साथ तालमेल, विज्ञान का अधिकतम उपयोग, विकेंद्रीयकरण को बढ़ावा एवं रोज़गार के नए अवसरों का सृजन, आदि मानदंडो को शामिल करना होगा। सृष्टि ने जो नियम बनाए हैं उनका पालन करते हुए ही देश में आर्थिक विकास होना चाहिए। अत: आज भी देश की संस्कृति, जो इसका प्राण है, को अनदेखा करके यदि आर्थिक रूप से आगे बढ़ेंगे तो केवल शरीर ही आगे बढ़ेगा प्राण तो पीछे ही छूट जाएँगे। इसलिए भारत की जो अस्मिता, उसकी पहिचान है उसे साथ में लेकर ही आगे बढ़ने की ज़रूरत है।

आर्थिक विकास के इस भारतीय मॉडल में कुटीर उद्योग एवं सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों को गाँव स्तर पर ही चालू करने की ज़रूरत है। इसके चलते इन गावों में निवास करने वाले लोगों को ग्रामीण स्तर पर ही रोज़गार के अवसर उपलब्ध होंगे एवं गावों से लोगों के शहरों की ओर पलायन को रोका जा सकेगा। देश में अमूल डेयरी के सफलता की कहानी का भी एक सफल मॉडल के तौर पर यहाँ उदाहरण दिया जा सकता है। अमूल डेयरी आज 27 लाख लोगों को रोज़गार दे रही है। यह शुद्ध रूप से एक भारतीय मॉडल है। देश में आज एक अमूल डेयरी जैसे संस्थान की नहीं बल्कि इस तरह के हज़ारों संस्थानों की आवश्यकता है।

वास्तव में, कुटीर एवं लघु उद्योंगों के सामने सबसे बड़ी समस्या अपने उत्पाद को बेचने की रहती है। इस समस्या का समाधान करने हेतु एक मॉडल विकसित किया जा सकता है, जिसके अंतर्गत लगभग 100 ग्रामों को शामिल कर एक क्लस्टर (इकाई) का गठन किया जाय। 100 ग्रामों की इस इकाई में कुटीर एवं लघु उद्योगों की स्थापना की जाय एवं उत्पादित वस्तुओं को इन 100 ग्रामों में सबसे पहिले बेचा जाय। सरपंचो पर यह ज़िम्मेदारी डाली जाय कि वे इस प्रकार का माहौल पैदा करें कि इन ग्रामों में

निवास कर रहे नागरिकों द्वारा इन कुटीर एवं लघु उद्योगों में निर्मित वस्तुओं का ही उपयोग किया जाय ताकि इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं को आसानी से बेचा जा सके। तात्पर्य यह है कि स्थानीय स्तर पर निर्मित वस्तुओं को स्थानीय स्तर पर ही बेचा जाना चाहिए।

ग्रामीण स्तर पर इस प्रकार के उद्योगों में शामिल हो सकते हैं – हर्बल सामान जैसे साबुन, तेल आदि का निर्माण करने वाले उद्योग, चाकलेट का निर्माण करने वाले उद्योग, कुकी और बिस्कुट का निर्माण करने वाले उद्योग, देशी मक्खन, घी व पनीर का निर्माण करने वाले उद्योग, मोमबत्ती तथा अगरबत्ती का निर्माण करने वाले उद्योग, पीने की सोडा का निर्माण करने वाले उद्योग, फलों का गूदा निकालने वाले उद्योग, डिसपोज़ेबल कप-प्लेट का निर्माण करने वाले उद्योग, टोकरी का निर्माण करने वाले उद्योग, कपड़े व चमड़े के बैग का निर्माण करने वाले उद्योग, आदि इस तरह के सैंकड़ों प्रकार के लघु स्तर के उद्योग हो सकते है, जिनकी स्थापना ग्रामीण स्तर पर की जा सकती है। इस तरह के उद्योगों में अधिक राशि के निवेश की आवश्यकता भी नहीं होती है एवं घर के सदस्य ही मिलकर इस कार्य को आसानी सम्पादित कर सकते हैं। परंतु हाँ, उन 100 ग्रामों की इकाई में निवास कर रहे समस्त नागरिकों को उनके आसपास इन कुटीर एवं लघु उद्योग इकाईयों द्वारा निर्मित की जा रही वस्तुओं के उपयोग को प्राथमिकता ज़रूर देनी होगी। इससे इन उद्योगों की एक सबसे बड़ी समस्या अर्थात उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचने सम्बंधी समस्या का समाधान आसानी से किया जा सकेगा।

देश में स्थापित की जाने वाली 100 ग्रामों की इकाईयों की आपस में प्रतिस्पर्धा भी करायी जा सकती है जिससे इन इकाईयों में अधिक से अधिक कुटीर एवं लघु उद्योग स्थापित किए जा सकें एवं अधिक से अधिक रोज़गार के अवसर निर्मित किए जा सकें। इन दोनों क्षेत्रों में राज्यवार सबसे अधिक अच्छा कार्य करने वाली इकाईयों को राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार प्रदान किए जा सकते हैं। इस मॉडल की सफलता सरपंचो एवं इन ग्रामों में निवास कर रहे निवासियों की भागीदारी पर अधिक निर्भर रहेगी।

आज जब भारत को आत्म निर्भर बनाने की बात की जा रही है तो सबसे पहिले तो हमें चीन पर अपनी निर्भरता को लगभग समाप्त करना होगा। इसके लिए भारतीय नागरिकों भी अपनी सोच में गुणात्मक परिवर्तन लाना होगा एवं चीन के निम्न गुणवत्ता वाले सामान को केवल इसलिए ख़रीदना क्योंकि यह सस्ता है, इस प्रकार की सोच में आमूलचूल परिवर्तन लाना होगा। भारत और केवल भारत में निर्मित सामान, चाहे वह थोड़ा महँगा ही क्यों न हो, को ही उपयोग में लाना होगा, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता की ओर तेज़ी से आगे बढ़ाया जा सके एवं रोज़गार के अधिक से अधिक अवसर भारत में ही उत्पन्न होने लगें। स्थानीय उत्पादों को आगे बढ़ाने की भी हम सभी भारतीयों की ज़िम्मेदारी है। स्थानीय उत्पादों को हमें ही अब वैश्विक स्तर पर ले जाना होगा। आज हर भारतवासी को अपने स्थानीय उत्पाद के लिए वोकल बनने की ज़रूरत है। अर्थात, न केवल स्थानीय उत्पाद ख़रीदने हैं बल्कि उनका अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गर्व से प्रचार प्रसार करना भी आवश्यक है।

प्रहलाद सबनानी,

सेवा निवृत्त उप-महाप्रबंधक,

भारतीय स्टेट बैंक

के-8, चेतकपुरी कालोनी,

झाँसी रोड, लश्कर,

ग्वालियर – 474009

मोबाइल नम्बर 9987949940

ईमेल psabnani@rediffmail.com